• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।

भागवत-पत्रिका

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल वंचनकर ।

वर्ष १३ | गौराब्द ४८१, मास—माधव २९, वार—प्रद्युम्न, मंगलवार, ३० माघ, सम्वत् २०२४, १३ फरवरी, १९६८ | संख्या ९

श्रीकार्पण्यपञ्जिकास्तोत्रम्

(श्रील रूप गोस्वामी विरचितम्)

तिष्ठन् वृन्दाटवीकुञ्जे विज्ञप्तिं विदधात्यसौ ।
वृन्दाटवीशयोः पादपद्मेषु कृपणो जनः ॥१॥

वृन्दावनके निकुञ्जमें अवस्थित होकर यह दीन व्यक्ति श्रीवृन्दावनके ईश्वर श्रीकृष्ण और वृन्दावनकी ईश्वरी श्रीराधिकाके पादपद्मोंमें यह निवेदन कर रहा है ॥१॥

नवेन्दीवरसन्दोह - सौन्दर्यास्कन्दनप्रभम् ।
चारुगोरोचनागर्वगौरवग्रासिगौरभाम् ॥२॥

हे वृन्दावनेश्वर ! तुम अपनी श्रीअङ्गकान्तिके द्वारा नवीन इन्दीवर (कमल) समूहके सौन्दर्य-गर्वको खण्डित कर रहे हो। हे वृन्दावनेश्वरी ! तुम अपनी श्रीअङ्ग-कान्तिद्वारा सुन्दर गोरोचनाकी कान्तिके गर्वको ग्रास (जय) कर रही हो ॥२॥

शातकुम्भकदम्बश्रीविडम्बिस्फुरदम्बरम् ।
हरता किंशुकस्यांशूनंशुकेन विराजिताम् ॥३॥

हे वृन्दावनेश्वर ! तुम्हारे वस्त्रकी शोभासे स्वर्ण-राशिकी श्री (सौन्दर्य) विडम्बित हो रही है। हे वृन्दावनेश्वरी ! पलाश पुष्पका सौन्दर्यहारि अरुण (लाल) वर्णके वस्त्र द्वारा तुम अत्यन्त सुशोभित हो रही हो ॥३॥

सर्वकैशोरवद्वृन्दचूड़ारूढहरिन्मणिम् ।
गोष्ठाशेषकिशोरीणां धम्मिल्लोत्तंसमालिकाम् ॥४॥

हे वृन्दावनेश्वर ! तुम कैशोर वयस्क समस्त व्रजबालकोंके शिरोभूषण मरकत-मणिस्वरूप हो। वृन्दावनेश्वरी ! तुम भी समस्त व्रजकिशोरियोंके शिरोभूषण मल्लिका-कुसुम स्वरूपा हो ॥४॥

श्रीशमुख्यात्मरूपाणां रूपातिशयविग्रहम् ।
रमोज्ज्वलव्रजवधूव्रजविस्मापिसौष्ठवाम् ॥५॥

हे वृन्दावनेश्वर ! नारायण, वासुदेव आदि तुम्हारे जो सभी स्वरूप हैं, इन सभी स्वरूपोंमें यह द्विभुज मुरलीधारी स्वरूप ही सबसे अधिक सुन्दर है। हे वृन्दाव-नेश्वरी ! लक्ष्मीकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ एवं परमरूपवती व्रजरमणियाँ तुम्हारे रूपको देख कर चमत्कृत होती हैं ॥५॥

सौरभ्यहृतगान्धर्वं गन्धोन्मादितमाधवाम् ।
राधारोधनवंशीकं महतीमोहिताच्युताम् ॥३॥

हे वृन्दावनेश्वर ! तुम्हारे श्रीअङ्गके सौरभद्वारा श्रीमती राधिका आकृष्ट होती हैं। हे वृन्दावनेश्वरी ! तुम भी अपने अङ्गके सौरभद्वारा श्रीकृष्णको उन्मादित करती हो। हे कृष्ण ! तुम वंशीद्वारा श्रीमती राधिकाका अवरोधन करते हो और हे श्रीमती ! तुम अपनी वीणाद्वारा श्रीकृष्णको विमोहित करती हो ॥६॥

राधाधृतिधनस्तेनलोचनालचापलम् ।
दृगञ्चलकलाभृङ्गीदष्टकृष्णहृदम्बुजाम् ॥७॥

हे वृन्दावनेश्वर ! तुम्हारा कटाक्षरूप चोर श्रीराधिकाके धैर्यरूपी धनका अपहरण कर रहा है। हे वृन्दावनेश्वरी ! तुम अपने कटाक्षरूपी भ्रमरी द्वारा श्रीकृष्ण के चित्तकमलका दंशन करा रही हो ॥७॥

राधागूढपरीहासप्रौढिनिर्वचनीकृतम् ।
व्रजेन्दसुतनर्मोक्तिरोमाञ्चिततनूलताम् ॥८॥

हे वृन्दावनेश्वर ! श्रीराधिकाके गूढ़ परिहास वाक्य द्वारा तुम निरुत्तर हो जाते हो और हे वृन्दावनेश्वरी ! तुम व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके परिहास वाक्य द्वारा रोमाञ्चको प्राप्त करती हो ॥८॥

दिव्यसद्गुणमाणिक्य श्रेणिरोहणपर्वतम् ।
उमादिरमणीव्यूहस्पृहणीयगुणोत्कराम् ॥९॥

हे वृन्दावनेश्वर ! तुम सुदिव्यगुणरूप मणि-माणिक्यके रत्न पर्वतस्वरूप हो। हे वृन्दावनेश्वरी ! तुम्हारे गुणोंकी उमा-लक्ष्मी आदि देवियाँ भी वांछा करतीं हैं ॥९॥

त्वां च वृन्दानाथेश ! त्वां च वृन्दावनेश्वरी !
काकुभिर्वन्दमानोऽयं मन्दः प्रार्थयते जनः ॥१०॥

हे वृन्दावनेश्वर ! हे वृन्दावनेश्वरी ! यह अज्ञ व्यक्ति तुम दोनोंका यथाशक्ति स्तव कर काकुवाक्य द्वारा यह प्रार्थना कर रहा है ॥१०॥

योग्यता मे न काचिद्वां कृपालाभाय यद्यपि ।
महाकृपालुमौलित्वात्तथापि कुरुतं कृपाम् ॥११॥

हे वृन्दावनेश्वर ! हे वृन्दावनेश्वरी ! तुम दोनोंकी कृपा प्राप्त करनेकी कोई योग्यता यद्यपि मुझमें नहीं है, तथापि मुझ पर कृपा करना होगा, क्योंकि तुम दोनों दयालु-शिरोमणि हो ॥११॥

अपि येऽप्यपराद्धेऽपि दृश्यन्ते कृपयाकुलाः ।
महाकृपालवो हन्त लोके लोकेशवन्दितौ ॥१२॥

इस जगतमें जो महाकृपालुके रूपमें परिचित हैं, वे अयोग्य और अपराधी व्यक्तियोंपर दया करते हैं। तुम दोनों उन सभी महादयालु व्यक्तियोंके भी शिरोमणि हो, अतएव मैं अयोग्य और अपराधी होने पर भी मुझपर कृपा करना होगा ॥१२॥

भक्तेर्वा करुणाहेतोर्लेशाभासोऽपि नास्ति मे ।
महालीलेश्वरतया तदप्यत्र प्रसीदतम् ॥१३॥

दयाके कारणरूपी भक्तिका लेशमात्र भी मुझमें नहीं है, किन्तु तथापि मुझे कृपा करना होगा, क्योंकि आप दोनों पतित उद्धारके लिये यह महालीला प्रकाश कर रहे हो ॥१३॥

जने दुष्टेऽप्यभक्तेऽपि प्रसीदन्तो विलोकिताः ।
महालीला महेशाश्च हा नाथौ बहवो भुवि ॥१४॥

हा नाथ ! वृन्दावनेश्वर ! हा ! वृन्दावनेश्वरी ! इस जगतमें बहुतसे दयावान पुरुष हैं, महालीलाकारी शङ्कर आदि कई देवता हैं, जो अपराधी और अभक्तोंको दर्शनमात्रसे कृपा करते हैं । आप दोनों सर्वश्रेष्ठ हैं, अतएव मुझ अपराधी व्यक्तिपर कृपा करना होगा ॥१४॥

अधमोऽप्युत्तमं मत्वा स्वमज्ञोऽपि मनीषिणम् ।
शिष्टं दुष्टोऽप्ययं जन्तुर्मन्तुं व्यधित यद्यपि ॥१५॥

हे वृन्दावनेश्वर ! हे वृन्दावनेश्वरी ! मैं अत्यन्त अधम होने पर भी मुझे उत्तम समझ कर, अज्ञ होने पर भी पण्डित समझ कर, दुष्ट होने पर भी शिष्ट विवेचना कर और अपराधी होने पर भी निरपराधी समझ कर मेरे प्रति प्रसन्न होवें ॥१५॥

(क्रमशः)

———

गौडीय-भजन प्रणाली

'श्रीगौरानुगत भजन' के नामयुक्त अनेक प्रकार की प्रणालियाँ श्रीश्रीगौरसुन्दरके चरणाश्रयाभिलाषी व्यक्तियोंको मोहमें डाल देती हैं। बद्धजीव भोगमयी प्रवृत्तिको लेकर इस संसारमें आये हुए हैं। यही उनकी बद्धता है। बद्धजीव अत्यन्त सतर्क और आश्रय बलसे बलवान न होने पर इस स्वाभाविक भोगप्रवृत्तिका परित्याग कर आत्माके नित्यस्वरूप सेवाधर्ममें प्रतिष्ठित नहीं हो सकते।

इस प्रसङ्ग पर श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि इन्द्रियसेवा, मत्स्य-मांस-भोजन और मादक द्रव्योंके सेवनमें बद्ध जीवोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, इसके लिए कोई प्रेरणाकी आवश्यकता नहीं है। जो व्यक्ति साधु-गुरु-पादाश्रयमें रहकर पदपद पर अत्यन्त सावधान होनेमें सफल हुए हैं, वे ही इन सबसे मुक्त हो सकते हैं। गुरु कहकर लघु व्यक्तिका आश्रय-ग्रहण करनेपर यह बल पाने की कहाँ सम्भावना है?

भोग ही नाना मूर्त्ति धारण कर धर्मके रूपमें परिचय देनेका प्रयास करता है। कई कापालिक सम्प्रदाय, अशुद्ध तांत्रिक बौद्ध, सहजिया, आउल, बाउल, कर्त्ताभजा, नेड़ानेड़ी, साँई, दरवेश, आदि अप-सम्प्रदायोंमें स्त्रीसङ्ग जनित दुराचार धर्मके अङ्गके रूपमें खूब प्रचलित है। दुर्भाग्ययुक्त जीव धर्म करनेके हेतु मंगलमय पथमें चलनेके लिए प्रस्तुत होने पर भी घूम फिरकर उस दुःखके आगार रूपी भोगके गड्ढे अवश्य ही गिरेगा। कापलिक लोग अशुद्ध तान्त्रिक और अत्यन्त तामस शाक्त धर्मका अवलम्बन कर जीव हत्या और उनके मांसास्वाद को जीवनका एकमात्र कृत्य समझकर भोगके गड्ढे में स्वयं डूबते हुए दूसरे व्यक्तियोंको भी डूबाते हैं। आसुर प्रकृतिके कोई-कोई व्यक्ति गाँजा, भाँग, शराब आदिके सेवनको ही धर्म समझते हैं। ये सभी व्यक्ति यह समझ नहीं पाते कि इन सभी कर्मों द्वारा दुष्कृतिका पोषण करनेके लिए शास्त्रों में उपदेश नहीं दिया गया है। इन सभी दुष्कर्मोंमें मनुष्यकी प्रवर्त्तित करनेके लिए शास्त्रविधिका प्रयोजन नहीं है।

श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—'व्यवस्थितिस्तेषु विवाह-यज्ञ-सुराग्रहैराशु निवृत्तिरिष्टा।" अर्थात् विवाह द्वारा स्त्री-संसर्ग, यज्ञमें पशुबलि, यज्ञमें सुरापान—ये सभी शास्त्रानुमोदित व्यवस्थाएँ उन कर्मोंमें मनुष्योंको प्रवर्त्तित करनेके लिए नहीं हैं, बल्कि बद्धजीवके स्वाभाविक प्रवृत्तिका संकोच करनेके लिए ही हैं। अर्थात् जीवको क्रमशः निवृत्ति पर लानेके लिए लोभमात्र हैं। निवृत्ति ही शास्त्रों का उद्दिष्ट विषय है। दुर्भागे जीव श्रीमद्भागवतके इस उपदेश और मीमांसा तथा मनुसंहिताके "प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला"—इस उपदेशका उल्लंघन कर भोगप्रवृत्तिको धर्मके रूप में वरण कर अपना सर्वनाश कर रहे हैं। दुःख

की बात यही है कि वे न समझकर अनन्त दुःख के भागी बनते हैं और समझाने पर भी समझना नहीं चाहते। बल्कि और भी प्रचण्ड हो जाते हैं, क्योंकि "उपदेशो हि मूर्खानां प्रकोपाय न शान्तये" (अर्थात् मूर्खोंको उपदेश देना उनकी मूर्खताको बढ़ाना मात्र है, न कि शान्तिप्रद है।)

इस श्रेणीके कई व्यक्ति श्रीगौराङ्ग पादाश्रित के अभिमानमें गौड़ीय-सम्प्रदायमें प्रवेश करके भी शुद्धभक्त-चरणाश्रयके अभावमें शुद्धभक्तिधर्मके वास्तविक अर्थको समझनेमें असमर्थ हो जाते हैं। वे नाना प्रकारकी गर्हित भोग प्रणालियोंका अवलम्बन कर धार्मिकके रूपमें परिचित होनेके लिए—अपने-अपने घृणित विचारोंको पुष्ट करनेके लिए सर्वदा ही व्यस्त रहते हैं। भजन-रहस्यको गोपनीय कहकर सरल व्यक्तियोंको अपने जालमें फँसाकर वे उन्हें अपने दलमें खींचनेका प्रयास करते हैं और उन्हें नाना प्रकारके निन्दनीय आचरणोंमें प्रवृत्त कराकर उन्हें नरकरूपीमें नदी में बहा ले जाते हैं और उनका सर्वनाश कर डालते हैं। श्रीगौरचन्द्रके भक्त श्रीरूपानुग-भजन करने वाले व्यक्ति इन्हें दुसङ्ग जानकर दूरसे ही वर्जन करते हुए महाजनानुमोदित प्रणालीका अवलम्बन कर निष्किंचन साधु वैष्णवोंका आश्रय ग्रहण करते हैं। जो व्यक्ति महाजनके प्रदर्शित मार्गका उल्लंघन कर नई प्रणालीकी सृष्टि करते हैं या ऐसे सृष्टि करनेवाले व्यक्तियोंका आनुगत्य स्वीकार करते हैं, वे शुद्ध गौड़ीय-भजन प्रणालीके प्रति सम्पूर्ण रूपसे उदासीन और अनभिज्ञ हैं। उनके सङ्ग द्वारा हमारे भजनमें अवनति होना अवश्य-म्भावी है।

जो व्यक्ति शुद्ध गौड़ीय-भजन-प्रणालीको असम्पूर्ण मानकर या अपनी प्रतिष्ठा-लाभकी आशा से उसमें नये संशोधन करनेके लिए व्यस्त हैं, वे भी गुरु-लंघनकारी और शुद्ध आम्नाय-परम्पराके उल्लंघनकारी हैं। इसलिए वे शुद्ध गौड़ीय-भजन-प्रणालीके अवज्ञाकारी हैं। वे कदापि निर्मल व्रज-रसका अनुसन्धान नहीं पाते, बल्कि जड़रसको ही व्रजरसके रूपमें वरण कर पतित होते हैं और अपने अनुगतजनोंको भी पतित करते हैं। जो व्यक्ति वस्त्रालङ्कारादि द्वारा पुरुषवेशको छिपा कर स्त्रीवेश-धारणको ही भक्ति समझते हैं वे इस श्रेणीकी गुर्ववज्ञाके अपराधके कारण अपराधी हैं। बुद्धिमान व्यक्ति यह अच्छी तरह जानते हैं कि अपराधीका संग कर भक्तिनाशक अपराध अर्जन करनेसे कोई लाभ नहीं है। बालिश (अज्ञ) व्यक्ति यह न समझकर अपराधको ही भजन-प्रणाली समझकर अत्यन्त अपराधरूपी जालमें फँस जाते हैं, किन्तु फिर भी वे अपनी बद्ध-अवस्था को समझ नहीं पाते। इसकी अपेक्षा अनुतापका विषय क्या हो सकता है? जो व्यक्ति वंश-गौरव के मोहसे अन्तर्दृष्टिरहित होकर वंशविशेषमें ही महाजनत्वको सीमित मानते हैं, वे श्रीमन्महाप्रभु के उपदेश—"जेइ कृष्णतत्त्ववेत्ता सेइ गुरु हय" का उल्लंघन कर अतात्त्विक गुरु-वंशका स्थापन करते हैं; उनके अपराधोंकी सीमा नहीं है। वे दुःसङ्गद्वारा अपराधसे परिपूर्ण होकर पतित

होते हैं। गौड़ीय-भजन-प्रणाली ऐसे व्यक्तियोंद्वारा रुद्धप्रवाह होकर भयङ्कर रोगोंको फैला रही है।

श्रीगौड़ीय-भजन-प्रणालीके माननेवाले पिपासु व्यक्ति श्रीचैतन्य-चरितामृत, श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु आदि प्रामाणिक ग्रन्थोंका अनुशीलन एवं श्रीरूप, श्रीजीव, श्रीरघुनाथ, श्रील कृष्णदास कविराज, श्रील श्यामानन्द प्रभु, श्रील नरोत्तम ठाकुर, श्रील श्रीनिवास आचार्य प्रभु, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुर आदि गौड़ीयाचार्य-शिरोमणियोंके आदर्श अनुसरण निरन्तर करते आ रहे हैं। इस प्रकारका गुरु-प्रणालीको स्वीकार कर श्रीगुरुचरणमें ऐकान्तिक आश्रय लेकर निरन्तर नाम भजन करना चाहिए। नाम-भजनके भक्तिके अङ्ग श्रीरूपगोस्वामी वर्णित चौसठ भक्ति-अङ्गोंके अन्तर्गत हैं और वे श्रीनामकीर्त्तनद्वारा अनुष्ठित होंगे। इसको छोड़ कर और किसी उपायद्वारा श्रीनाम-भजन संभव नहीं है। अपनी अधिकार-उन्नतिके लिए क्रम स्वीकार कर पहले अर्चनके साथ केवल श्रीनामका श्रवण-कीर्त्तनादि करना होगा। उसके द्वारा अन्तःकरणकी शुद्धि होकर अनर्थ निवृत्ति या जीवन्मुक्ति होने पर क्रमशः रूप, गुण, लीला आदिकी स्फूर्त्ति स्वतः ही होगी।

अनर्थयुक्त अवस्थामें कृत्रिमरूपसे उनका श्रवण, कीर्त्तन आदि करनेसे केवल हमारे अनर्थोंकी ही वृद्धि होती है और जड़भोग-पिपासाकी निवृत्ति होनेके बदलेमें वह और भी दृढ़ बन जाती है। तब जो श्रवण-कीर्त्तन करते-करते हृद्रोगरूपी कामको दूर करनेकी जो व्यवस्था है, जातनिष्ठ व्यक्तिके लिए जिस अवस्थामें श्रद्धा घनीभूत होकर निष्ठा, रुचि और आसक्तिके रूपमें परिणत हुई है, साधन-क्रमके इस अवस्थामें इसका यथार्थ फल प्राप्त होता है। यहां 'श्रद्धा' से कोई प्रारम्भिक श्रद्धाको समझनेका प्रयास न करें। जो व्यक्ति श्रद्धाके यथार्थ अर्थको समझनेमें असमर्थ हैं, उन्हें श्रीमद्भागवतके देवहूति-कपिल संवादमें कहे गये "सतां प्रसङ्गात्" श्लोककी टीकाएँ विशेषरूपसे आलोचना करनेकी आवश्यकता है। ऐसा करने पर वे श्री जीव गोस्वामीके अभिप्रेत अर्थको पूर्ण रूपसे समझ सकेंगे।

किसी-किसी स्थानमें 'गुरुकृष्ण अभेद' इस अर्थ को लेकर गुरु अभिमानी व्यक्ति भोग-आनन्दमें मदमत्त होकर स्वयं 'कृष्ण' बनकर भोगकी चरम अवस्थामें डूबे रहते हैं। वे श्रीमन्महाप्रभुके साथ विरोध कर उनके अनुगत होनेका भान दिखलाकर मूर्ख लोगोंका संग्रह करते हुए देशका सर्वनाश कर रहे हैं। वे श्रीचैतन्यचरितामृतके 'यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास' इस अचिन्त्य भेदाभेद तत्त्वकी अवज्ञा कर श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणोंमें असीम अपराध करते रहते हैं। वे श्रील रघुनाथदास गोस्वामीपादके "गुरुवरं मुकुन्दप्रेष्ठत्वे स्मर परमजस्त्रं ननु मनः" इस उपदेशका उल्लंघन कर केवल गौड़ीय वैष्णवोंके ही नहीं, बल्कि मानवमात्रके महान शत्रु बने हुए हैं।

सहजिया आदि कुछ अपसम्प्रदायके व्यक्ति अनर्थयुक्त अवस्थामें मधुर रसके भजनका अभ्यास करते हुए पारकीय रसास्वादको भजनका अङ्ग

कहते फिरते हैं और अपने मतका पोषण करनेके लिए कुछ अनुकूल वाक्य, पयार, अनुष्टुप् छन्द आदियोंकी रचना कर उन्हें महाजन-रचित कह कर जगतकी वञ्चना करते हैं। वे वृथा ही श्रीरामानन्द, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरूप, श्रीसनातन और श्रीरघुनाथ—इन पञ्च रसिकोंके अनुगत परिचित होनेके लिए दुर्वासनाका पोषण करते हुए गोस्वामियोंके श्रीचरणोंमें तथा श्रीमन्महाप्रभु के चरणों भयङ्कर अपराधका सञ्चय कर बैठते हैं। इस तरह वे व्यभिचारके भयङ्कर स्रोत में डूबकर उसे ही आनन्द मान बैठे हैं।

कुछ दायित्वज्ञान रहित तथाकथित शिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति आचार्यसन्तानके रूपमें परिचित होकर अपने शिष्योंद्वारा प्राप्त कनक-कामिनी—प्रतिष्ठा संग्रहको ही जीवनका सार समझकर भक्त का भान करते हुए श्रीमन्महाप्रभुके नामके बलपर शिष्योंके अर्थ द्वारा अपना उदर-पोषण करते हैं। यह धारा श्रीचैतन्य महाप्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य प्रभु और श्रीगोस्वामियोंद्वारा अनुमोदित नहीं है। बलपूर्वक अपनेको 'गोस्वामी' कहलवा कर वे अजितेन्द्रिय होकर असंयमके आदर्श को ही जगतमें सर्वश्रेष्ठ वरणीय वस्तुके रूपमें प्रचार करनेका प्रयास करते हैं। इन लोगोंके अनुगत व्यक्ति गौड़ीय-भजन-प्रणालीको कदापि प्राप्त नहीं कर सकते।

गौड़ीय-भजन-प्रणाली एकमात्र निष्किंचन महापुरुषोंद्वारा सुरक्षित धन है। भोगी व्यक्ति इसका कोई सन्धान नहीं पाये हैं और न पा ही सकते हैं। वे भोग-वासना की तृप्तिके लिए नाना देवदेवियोंकी उपासना कर और शिष्यों द्वारा भी कराकर भजन-पथसे विच्युत हो पड़े हैं। बुद्धिमान व्यक्ति सब प्रकारसे विचार कर अपना कर्त्तव्य स्थिर करते हैं।

एक श्रेणीके व्यक्ति लोग ऐसे हैं जो आलस्य-परतन्त्रता और मूर्खताको ही गौड़ीय-भजन कहने का भ्रम कर बैठते हैं। साधक-अवस्थामें निर्जनमें बैठकर माला घुमानेसे, कृत्रिमरूपसे लीला-स्मरण की चेष्टा करनेसे और अत्यन्त कष्टके साथ दैन्यका अभिनय करनेसे भजन नहीं होता। निर्जन-भजन, लीला-स्मरण, और दैन्यभाव सिद्ध व्यक्तिके लिए ही सम्भवपर हैं, असिद्ध व्यक्तियोंद्वारा इनका कृत्रिम रूपसे प्रकाश, और पुलक, कम्पाश्रु आदि विकारोंकी चेष्टा केवल अनर्थको ही बढ़ाता है। साधक व्यक्ति श्रीरूप गोस्वामीके निर्देशानुसार नाना प्रकारसे श्रीभगवत्सेवा-कार्यमें नियुक्त न रहने कदापि मायिक अभिनिवेश उनके चित्तसे दूर न होगा। सम्बन्ध-ज्ञानकी पुष्टिके लिए श्रीगुरु-पादपद्मोंमें उनके द्वारा निर्दिष्ट भक्ति-शास्त्रोंका अध्ययन, श्रवण और विचार करना होगा।

"सिद्धान्त बलिया चित्ते ना करो अलस।
इहा हैते कृष्णे लागे सुदृढ़ मानस॥"

श्रील नरोत्तम ठाकुरजीने भी सिद्धान्तोंका परिहार करनेके लिए नहीं कहा है। इसलिए उन्होंने श्रीजीवगोस्वामीपादके आश्रय ग्रहण करना

आवश्यक बतलाया है। नहीं तो वृथा ही तर्कानल हमारे चित्तको जलाता रहेगा। सिद्ध व्यक्तिके आचरणमें या कार्योंमें विशेष अङ्गचेष्टा नहीं भी हो सकती है, किन्तु साधक अवस्थामें उनका अनुकरण करनेसे अलक्षितरूपसे माया हमें नाना प्रकारसे अपने फंदेमें जकड़ लेती है। सेवाकार्यमें आलस्य भजनाभावसे होता है। कृत्रिमभाव-प्रकाश द्वारा यद्यपि पिच्छिल हृदयका परिचय मिलता है, तथापि उसके द्वारा हृदय कठिन हो जाता हैं। "तदस्मसारं हृदयं बतेदं" इस श्लोककी टीकामें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्त्ती ठाकुरने हमें विशेषरूपसे इस सम्बन्धमें सतर्क कर दिया है। श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुमें श्रील रूप गोस्वामी पादने स्पष्ट उपदेश किया है कि भावका अंकुर उदित होनेपर नौ प्रकारके भावांकुर देखे जाते हैं। कृष्णेतर विषयमात्रमें वैराग्य होना उनमेंसे एक है। जहाँ भोगका ताण्डव नृत्य हो, वहाँ यदि कृष्णसेवाके बिना थोड़ा समय भी व्यतीत हो, तो यही जानना चाहिये कि भावका अंकुर नहीं हुआ है। वास्तवमें वह आत्मप्रतारणा मात्र है। जहाँ दूसरेको प्रतारणा करनेकी इच्छा है, वहाँ अभक्तोचित और अभद्रोचित कपटता वर्तमान है। ऐसी आत्म-प्रवञ्चनारूपी कपटतामें भजनकी कोई बात ही नहीं है। सरल साधकोंका कर्त्तव्य है कि वे विशेषरूपसे सावधान रहकर ऐसे भावाभाससे अपनी आत्मरक्षा करें।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(ऐतिह्य)

९—श्रीमन्महाप्रभुके सम-सामयिक और परवर्त्तिकालमें किन-किन पार्षद् भक्तोंने उनका मनोऽभिष्ट प्रचार किया था?

"श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीजीव, श्रीगोपालभट्ट, श्रीरघुनाथदास और श्रीरघुनाथभट्ट, श्रीराय रामानन्द, श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य आदियोंके द्वारा सम्बन्ध-तत्त्वको सुन्दर रूपसे प्रचार करवाया था। इन पार्षदोंने ही अभिधेय-तत्त्वमें कीर्त्तनकी श्रेष्ठता दिखलाई है और प्रयोजन-तत्त्वमें व्रजरस आस्वादन करनेका अत्यन्त सरल उपाय बतलाया है।"

१०—मनोहरसाही, गराणहाटि, और रेणेटि-इन तीन गान-पद्धतियोंका क्या इतिहास है?

"श्रीश्रीनिवासाचार्यने काटवा प्रदेशको उज्ज्वल किया था। उनका प्रदेश मनोहरसाही परगनाके अन्तर्गत है। इसलिए उनके द्वारा प्रवर्त्तित गान-पद्धतिका नाम 'मनोहरसाही' गान है। श्रीनरोत्तम

ठाकुर राजशाही जिलेके अन्तर्गत गराणहाटि या गड़ेरहाट परगनाके खेतुरी ग्रामके अधिवासी थे, इसलिए उनके द्वारा प्रवर्त्तित गान पद्धतिका नाम 'गराणहाटि' गान है । श्रीश्यामानन्द मेदिनीपुर जिले के निवासी थे। उनके द्वारा प्रवर्त्तित गान-पद्धतिका नाम 'रेणेटि' गान कहा जाता है। श्री जीव गोस्वामीपाद इन्हें उत्साह देनेके लिए श्रीनिवासाचार्यको 'प्रभु' पदवी, श्रीनरोत्तमदासजी को 'ठाकुर' पदवी, और श्रीश्यामानन्दजीको 'प्रभु' पदवी दी थी। श्रीजीव गोस्वामी परमोदार-स्वभाव और गुणग्राही थे। आचार्य-प्रभु ब्राह्मण थे, उनको 'प्रभु' पद देनेके लिए कोई आपत्ति नहीं किया।"

—'सिद्धान्त-विरुद्ध और रसाभास स. ता.६।२

११—मालाधार वसु गुणराज खाँका क्या इतिहास है ?

"बंगलाके आदि-कवि गुणराज खाँनने १३९५ शकाब्दमें 'श्रीकृष्ण-विजय' ग्रन्थ प्रणयन करना आरम्भ किया था और १४०२ शकाब्दमें इस ग्रन्थ को समाप्त किया था। इनके पहले चण्डीदास और विद्यापतिने बंगला भाषामें थोड़ी बहुत रचनाएँ कीं थीं, किन्तु उन लोगोंने कोई काव्यकी रचना नहीं की थी। उन दोनों द्वारा रचित कुछ असंलग्न गीतमात्र पाये जाते हैं। १४०० शकाब्दके पहले बंगला भाषामें रचित कोई काव्य देखा नहीं जाता। विलायती लोग चासरको मानते हैं, हम काव्यके सम्बन्धमें गुणराज खाँनको मानते हैं। यह पुस्तक नहीं रहनेसे किसी भी बंगाली पुस्तकालयको सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता। यह ग्रन्थ पारमार्थिक लोगों के लिये परम आदरणीय है। वैष्णवाग्रगण्य पूज्यपाद श्रीगुणराज खाँन ने शास्त्र-शिरोमणि श्रीमद्-भागवतके दशम्-एकादश-स्कन्धका जनसाधारण पाठ करने योग्य अनुवादके रूपसे इस ग्रन्थकी रचना की थी। इस कारणसे इस ग्रन्थका क्या माहात्म्य है, यह इस क्षुद्र उपक्रमणिकामें कहना असम्भव है। वैष्णव-जगतमें यह ग्रन्थ सर्वत्र पूजनीय है। जिस 'श्रीकृष्ण-विजय' ग्रन्थका पाठ कर स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभुने अत्यन्त प्रशंसा की है, वह ग्रन्थ गौड़ीय-वैष्णव-समाजमें कितना आदरणीय है, यह कहनेकी आवश्यकता न होगी।

बङ्गीय सम्राट् आदिशूरने बौद्धधर्म - दूषित बंगदेशमें आचरसम्पन्न ब्राह्मणों और कायस्थोंका अभाव देखकर कान्यकुब्जसे पाँच ब्राह्मणों तथा पाँच कायस्थोंको बुलाया। उन पाँच कायस्थोंमें से सुसभ्य और सरल बुद्धियुक्त दशरथ वसु गौड़देशमें आये थे। उनके वंशकी तेरहवीं पीढ़ीमें श्रीगुणराज खाँन उत्पन्न हुए थे। इनका वास्तविक नाम श्री मालाधर वसु था, गौड़ीय-सम्राट द्वारा दिया हुआ उपाधि 'गुणराज-खाँन' था। इनके चौदह पुत्र थे। उनमें द्वितीय लक्ष्मीनाथ वसु थे, जिनकी उपाधि 'सत्यराज-खाँन' थी। उनके पुत्र श्रीमन्महाप्रभुजीके पार्षद श्रीरामानन्द वसु थे। रामानन्द वसु पन्द्रहवीं पीढ़ीमें थे। बंगीय १२९२ वर्षमें श्रीकुलीनग्राममें विशेष अनुसन्धानपूर्वक वसु महाशयके घरसे यह तथ्य संग्रह किया गया है। श्रीमालाधर वसु अत्यन्त प्रसिद्ध धनशाली थे। उनके किले और देवालया-

दियोंको देखकर जाना पड़ता है कि उनकी राज्यश्री अत्यन्त समृद्धिशाली थी।"

—'उमक्रमणिका' श्रीकृ. वि.

१२—अतिबाड़ी सम्प्रदाय और विषकिषणका क्या इतिहास है ?

"उड़ीसामें जगन्नाथ का एक दल है। वे अतिबाड़ी है। सुना जाता है कि जगन्नाथ पहले श्रीमन्महाप्रभुजीकी आज्ञासे हरिदास ठाकुरका शिष्य हुआ। बादमें शुद्धभक्ति छोड़कर मायावाद ग्रहण करनेके कारण महाप्रभुजाने उसे 'अतिबाड़ी' कहकर परित्याग कर दिया। अतिबाड़ी दल बङ्गदेशमें बाउल-दलकी तरह प्रच्छन्न और विस्तृत है। इस दलके कुछ जालपोथियाँ हैं। उनमें लिखा है कि चैतन्य महाप्रभु फिरसे प्रकाशित होंगे। उसी आधार पर कुछ दुष्ट लोगोंमें से कोई चैतन्य, कोई ब्रह्मा, कोई बलदेव, कोई कृष्ण कहकर लोक-प्रतारणा करने लगे। विषकिषण नामक एक खण्डायत (किसान) कुछ योगबल प्राप्तकर अपनेको महाविष्णु कहकर प्रचार करने लगा। सरदाइपुर के चट्टीसे एक कोस दूर एक जंगलमें दलबलके साथ रहकर वह एक मन्दिर बनाने लगा। अतिबाड़ी व्यक्तिओंके मालिकाओंमें लिखा था—"महाविष्णु विषकिषण गुप्त रूपसे है, और कोई नहीं जानता, १४ चैत्रको युद्ध होगा।" तब महाविष्णु अपना चतुर्भुज दिखायेंगे। इस बातका प्रचार होने पर बहुतसे ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ अपने पतियोंकी आज्ञा का उल्लंघन कर उसकी सेवा करनेके लिए आती थीं। भृङ्गारपुरके चौधुरीकी स्त्रियोंको कुछ चित्त-विभ्रम होने पर वहां के पुरुषोंने कमिश्नर राबिन्स साहबको बतलाया। ओयालटन साहब द्वारा मुझे भेजने पर मैंने रात्रिमें जङ्गलके भीतर जाकर उस 'तथाकथित महाविष्णु' से बात किया। उसके साथ बातकर मैंने यह जाना कि उसने अंग्रेज-राजत्वको ध्वंस करनेकी प्रतिज्ञा की है। * * * पुरी जाकर उस 'महाविष्णु' का विचार आरम्भ हुआ। बहुत दिन विचार करनेके पश्चात् मैंने उसे डेढ़ वर्ष कैद की सजा दी। उसके जटाको काट देने पर उसके उपासकोंने प्रतारक कहकर उसका परित्याग कर दिया।"

—"ठाकुरका आत्मचरित्र"

१३—श्रीगौर-जन्मस्थान श्रीमायापुरके सम्बन्ध में श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने संक्षेपमें क्या तथ्य प्रकाशित किया है ?

"श्रीचैतन्य भागवत आदि प्रामाणिक ग्रन्थोंको देखकर अनुसन्धान कर हमने महाप्रभुजी के कई लीला-स्थानोंका निर्देश किया है। वे सभी विवरण भक्तोंकी सुखवृद्धि के लिए हमने क्रमशः प्रकाश करनेका संकल्प किया है। सबसे पहले हम श्रीमन्महाप्रभुजी के निवास स्थान निर्देश कर रहे हैं। × × × श्रीकवि कर्णपूरजी ने लिखा है कि नवद्वीप धाम श्रीगंगाजी द्वारा परिव्याप्त है। तंत्रमें भी ऐसा कहा गया है। खड़िया नामकी नदी जो गोयाड़िके पाससे होकर स्वरूपगंजके निकट भागीरथीमें मिली है, उसका नाम वाग्देवी या जलङ्गी है। बहुत पहले वाग्देवी हरिशपुरके निकट मन्दाकिनीका आश्रय कर देवपल्लीके निकटसे होकर

भालुका नामक नगरको स्पर्श करते हुए गोयाल-पाड़ाके निकट भागीरथीमें गिरती थीं। गङ्गाजी की मन्दाकिनी-स्रोत जब सूख गई, तब वाग्देवी मायापुरके एक तरफसे होकर भागीरथीको प्राप्त हुईं। वाग्देवी भागीरथीको प्राप्त करते समय श्रीमायापुरके अनेक वंश नष्ट प्राय: हो गये। उस समय ब्राह्मण--पण्डितोंने श्रीप्रौढ़ामाया और वृद्ध शिवको लेकर कुलिया ग्रामके मैदानमें नया ग्राम बसाया। वह नया गाँव ही वर्त्तमान नवद्वीप शहर है। नये गाँवमें श्रीमन्महाप्रभुजीका लीला--स्थान कुछ भी नहीं है। यह स्थान नवद्वीपके अन्तर्गत वृन्दावनका पुलिन है। श्रीनवद्वीपधाम--माहात्म्य ग्रन्थमें जो मानचित्र दिया गया है, उसमें एक मध्य-वर्ती चक्र है। उस चक्रस्थ समस्त भूमि अन्तर्द्वीप है।×× उस मायापुर गांवमें ही श्रीचैतन्य महा-प्रभुके समय ब्राह्मणोंका निवास-स्थान था, जो वाग्देवीके धारा--परिवर्त्तनके कारण नष्ट हो गया। मायापुरके एकांशमात्रमें मनुष्योंका निवास है। यह अंश बल्लालदीघीका दक्षिण कोण है।++ हमने बहुत अनुसन्धान कर और किसी प्रकार गोप्य इङ्गितोंके अनुसार तात्कालिक गंगा तीर स्थिर किया है। मायापुरके दक्षिणांशमें जो वन है, उसके समीप 'शिव-डोबा' नामक एक दीर्घ जलधारा अभी भी प्रवाहित हो रही है। इस जलधाराके तीरमें खड़े होकर गंगानगर की ओर देखनेसे एक नदी-तीर-प्राय भूमि मायापुरकी ओरसे गंगानगरकी ओर जाती-सी दिखाई देती है।++ श्रीवृन्दावन-दास ठाकुर द्वारा रचित श्रीचैतन्य भागवतमें इसका वर्णन किया गया है। गंगाके तट-भूमिपर चलने पर बारकोना घाट और नागरिया--घाट निकट ही हैं। नागरिया घाट पूर्व नदीयाके प्रधान बाजारके पास था। उस बाजारके बल्लालदीघिके कुछ पश्चिमांश में रहनेके कारण श्रीश्रीमायापुर और महाप्रभुजी का जन्म तथा लीलास्थान अनुसन्धान करने पर भक्तवृन्द अवश्य ही पायेंगे। कुलियाके मैदानवासी आखड़ाधारी वैष्णव इस विषयमें कुछ जाननेकी चेष्टा नहीं करते, यही बड़ा दुर्भाग्यका कारण है।"

—'श्रीनवद्वीपधाम'--वि. प.

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

———

सन्दर्भ-सार

(श्रीकृष्ण-सन्दर्भ २१)

व्रजवासी गोपादि श्रीकृष्णके नित्य परिकर हैं, यह स्वयं श्रीकृष्णके इस वचनद्वारा जाना जाता है—

अपर्त्वेत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ।
स्वयागे विहतेऽस्माभिरिन्द्रो नाशाय वर्षभि ॥
तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥

(भा. १०।२५।१५, १८)

मैंने इन्द्रका यज्ञ बन्द कर दिया है। इसलिये वर्षा-ऋतु अतीत होने पर भी प्रबल वायु और शिलामय वृष्टि (ओले वर्षा) के साथ मेरे पित्रादि व्रज-परिकरोंका नाश करनेके लिए इन्द्र वर्षा कर रहे हैं। यह गोष्ठ (व्रज) मेरे आश्रित है। मैं ही इसका एकमात्र रक्षक हूँ और यह एकान्त रूपसे मेरे द्वारा अपनाया गया है। इसलिये अपने योग-मायाके प्रभाव (या अपने प्रभाव) द्वारा इसकी रक्षा करूँगा। इस विषयमें सदा मैं कृतसंकल्प हूँ।

दशम स्कन्धमें अन्यत्र भी कही गई है—

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ।
हरेर्निवासात्मगुणैः रमाक्रीड़मभून्नृप ॥

(भा. १०।५।१८)

श्रीकृष्णके आविर्भाव कालसे नन्दकी व्रजभूमि सर्व समृद्धिसम्पन्ना हुई थी। हरिका निवासभूत जो आत्मा, उसका जो गुण, उसके द्वारा सर्वसमृद्धिमान अर्थात् 'आत्मा' शब्दसे स्वरूपका बोध होता है। व्रजका स्वरूप यही है कि श्रीकृष्ण वहाँ नित्य निवास करते हैं। दूसरे स्थानोंमें भक्तोंके हृदयोंमें कभी-कभी श्रीकृष्णकी विच्छेद-स्फूर्त्ति होती है, किन्तु श्रीव्रजके साथ कदापि विच्छेद नहीं होता। श्रीकृष्णकी विहारभूमिमें जो सभी असाधारण गुण रहना चाहिए, उन सभी गुणोंद्वारा वह सर्वसमृद्धि से पूर्ण है। उस व्रजका विशेष रूपसे परिचय देनेके लिए 'नन्दका व्रज' कहा गया है। अर्थात् जहाँ सपरिकर श्रीव्रजराज नन्द सदा निवास करते हैं। वह व्रज सर्वदा निखिल सम्पदोंसे परिपूर्ण है। इसलिए श्रीकृष्णके आविर्भाव कालसे आरम्भ कर वह श्रीव्रजभूमि रमा (लक्ष्मीजी) की क्रीड़ाभूमि हुई थी। यहाँ 'रमा' शब्दसे महालक्ष्मीस्वरूपा श्रीव्रज-देवियोंका बोध होता है। ब्रह्मसंहितामें उन्हें 'लक्ष्मी' शब्दसे सम्बोधन किया है—

चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम् ।
लक्ष्मीसहस्रशत - सम्भ्रमसेव्यमानं-
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

(ब्र. सं. ५।१९)

अर्थात् चिन्तामणिराशिद्वारा निर्मित असंख्य गृह-समूह, और लक्ष-लक्ष उत्तम कल्पवृक्षों द्वारा आवृत श्रीगोकुलमें सुरभियोंका पालन करते हुए

सहस्र-सहस्र लक्ष्मियों द्वारा जो परमादरके साथ सेवित होते हैं, उन आदिपुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।

श्रीमद्भागवतके इस श्लोकमें गोपादियोंका नित्य परिकरत्व वर्णित हुआ है—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥
(भा. १०।१४।३२)

अहो! नन्दगोप व्रजवासियोंका कितना अनिर्वचनीय सौभाग्य है कि जो परमानन्द पूर्णब्रह्म उनके सनातन और परम मित्र हैं। यहाँ 'भाग्य' कहनेसे शुभकर्मको नहीं सम्बोधन किया है। क्यों कि शुभकर्मद्वारा श्रीकृष्णप्राप्ति असंभव है। उनकी कृपा ही उनकी प्राप्तिका एकमात्र कारण है। यहाँ कृपाकी ही प्रधानता है। इसलिये यहाँ 'भाग्य' का तात्पर्य श्रीकृष्णकी अनिर्वचनीय कृपा है। श्लोकमें 'भाग्य' शब्दकी पुनरुक्तिद्वारा परमादरके साथ उस भाग्यकी सब प्रकारसे अविच्छिन्नता और श्रेष्ठता दिखाई गई है। अर्थात् श्रीकृष्णका व्रजवासियोंका सनातन मित्र होना परम भाग्यस्वरूपहै। यह भाग्य देश-काल-पात्रकी विलक्षणताके कारण खण्डित नहीं होता। सब अवस्थाओंमें वे सौभाग्ययुक्त हैं। पूर्ण, परमानन्द, और ब्रह्म—इन तीन पदों द्वारा सनातनत्व सिद्ध होता है। अर्थात् पूर्ण परमानन्द ब्रह्म-वस्तु सनातन हैं, यह बोलना अत्युक्ति होगी। श्लोकमें 'सनातन' शब्द 'मित्र' पद का विशेषण है अर्थात् श्रीकृष्ण व्रजवासियोंके मित्र रूपसे नित्य विद्यमान हैं। अथवा विधेय मित्र पदको विशेषरूपसे समझानेके लिए अनुवाद श्रीकृष्ण पदकी विशेषता दिखलाई गई है। जिस प्रकार "यह मनोरम सुवर्ण कुण्डल है"—इस वाक्यमें कुण्डलका ही मनोरमत्व दिखलाया गया है। अर्थात् अनुवाद सुवर्ण पदका 'मनोरम' यह विशेषण विधेय है। इसके द्वारा कुण्डलका ही मनोरमत्व प्रदर्शित हुआ है। इसलिये इस श्लोकमें अनुवाद श्रीकृष्णाख्य परब्रह्मका परमानन्दमय पूर्णत्व दिखलाया गया है। इन दोनों पदोंके तुल्यार्थमें प्रयुक्त सनातन पद भी मित्रताका सनातनत्व प्रदर्शन कर रहा है अर्थात् सनातन श्रीकृष्ण मित्र होनेके कारण ही यह मित्रता भी सनातन है। वह कदापि ध्वंस नहीं होता। किस समयका मित्र-यह नहीं कहा गया है। अतएव यहाँ सर्वकाल व्यापी मित्रत्व सूचित हुआ है।

अहो! व्रजवासियोंके भाग्यकी बात और क्या कहें? अपने अनिर्वचनीय सौभाग्यको दिखलानेके अभिप्रायसे ब्रह्माजीने कहा—

एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्ता-
मेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः।
एतद्धृषीकचषकैरसकृत् पिबामः
शर्वादियोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते॥

हे अच्युत! व्रजवासियोंकी अनन्त भाग्य-महिमा की बात तो दूर रहें, हम भी महाभाग्यशाली हैं। क्योंकि इन्द्रियरूप पानपात्र द्वारा आपके पादपद्मों का मकरन्द, जो अमृत और मदिरास्वरूप है, निरन्तर पान कर रहा हूँ।

व्रजवासियोंकी अखण्डिता भाग्यमहिमाको क्या

कहें, महादेव आदि दशदिक्पाल देवतारूपी हम भी महाभाग्यशाली हैं। दशदिक्पालोंमें परम भक्त होनेके कारण महादेव मुख्य हैं। इसलिये पहले उनका नाम-उल्लेख किया गया है। अपनी महाभाग्यशालिता दिखला रहे हैं—हम यहाँ आगमन कर इन्द्रियरूप पानपात्रद्वारा साक्षात् सम्बन्धसे आपके पादपद्ममधु रूपी अमृत और मदिराका बारम्बार पान करते हैं। चरणकी सौन्दर्यादि अत्यन्त मनोहरी होनेके कारण मध्वादि त्रिविध वस्तुरूपसे उसका निरूपण किया गया है। श्लोकस्थ 'एतत्' 'पद अङ्घ्रयुदजमध्वमृतासवं' पदका विशेषण है अर्थात् यह चरणकमल मध्वामृत-मदिरा ऐसा भी अर्थ किया जा सकता है।

एतद्धृषीकचषकैः'—इस पदका कोई ऐसा अर्थ करते हैं—व्रजवासियोंके इन्द्रियरूप पानपात्रद्वारा इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवता (हम) आपके चरण कमल-मधु अमृत मदिरा पानकर परम सौभाग्य शाली हैं। किन्तु ऐसा कहना असङ्गत है। क्योंकि इस मतानुसार व्रजवासियोंका प्राकृत देह है-यह विचार आ जाता है। किन्तु व्रजवासियोंके अप्राकृत प्रेममय विग्रह हैं। उनके श्रीविग्रहकी चक्षु आदि इन्द्रियोंमें विभिन्न इन्द्रिय - अधिष्ठाता देवताकों कर्त्तृत्व नहीं है। प्रेम ही सर्वेन्द्रियोंका प्रवर्त्तक है। जब जिस इन्द्रियकी जिस चेष्टा प्रकाश पाने पर श्रीकृष्णको सुख होता है, तब प्रेम उनके उस इन्द्रियमें वह चेष्टा ही प्रकाश करते हैं। क्योंकि व्रजवासियोंके इन्द्रियसमूह द्वारा जो भोग सम्पन्न होता है, इन्द्रिय-अधिष्ठाता देवताओंके कर्त्तृत्व-अधीनतामें वह भोग सम्पन्न नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि इन्द्रिय-अधिष्ठाता देवता करण-पक्षपाती हैं अर्थात् इन्द्रियकी जिस प्रकार भोग-साधनता है, भोग कर्त्तृत्व नहीं है, उसी प्रकार देवता लोग भोग-साधन करते हैं, उनका कर्त्तृत्व नहीं है। देहगत सुख-दुःखका भोक्ता आत्मा है। अतएव अप्राकृत व्रजवासियोंके देहमें इन्द्रिय-अधिष्ठाता देवताओंका कोई कर्त्तृत्व न होनेके कारण ब्रह्माजीने प्रार्थना की थी—

> तद्भूरि-भाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
> यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोऽभिषेकम्।
> यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्द-
> स्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥
> (भा. १०।१४।३४)

इस गोकुलमें किसी गहने वनमें यदि जिस किसी तृणादिका जन्म हो, तो उसे महाभाग्य समझता हूँ। क्योंकि इसके द्वारा किसी गोकुलवासी की पदधूलिद्वारा अभिषिक्त होने की सम्भावना है। उनकी पदधूलि प्राप्त करनेसे धन्य हो सकूँगा क्योंकि जिनकी चरणरेणुको अब तक भी श्रुतियाँ ढूँढ़ रही हैं, वे भगवान मुकुन्दरूपी आप गोकुलवासियोंके जीवन-स्वरूप हैं।

इसके द्वारा यह बतलाया गया कि गोकुलवासी लोग श्रीकृष्णके नित्य - परिकर हैं। इसलिए श्रीकृष्णचरण-सेवा-लक्षणरूप जिस भूरिभाग्यकी प्रार्थना की गई है, वह गोकुलमें जन्म ग्रहण करने पर सर्वदा सम्भव है। गोकुलवासी लोग सर्वदा उस सेवा – सुखमें मग्न हैं। उनकी भक्तिद्वारा भगवान भी नित्यऋणी होकर उनके प्रेम-बन्धनमें बँधकर विराजमान हैं।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

———

परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुदेवकी

परमपुनीत आविर्भाव-तिथिपर दीन-हीन दासाधमकी

सविनय पुष्पांजलि

करता हूँ दो पुष्प विनय के,
चरणों में अर्पित गुरूवर।
करके अङ्गीकार इन्हें प्रभु,
मुझे सेवा का दे दो अवसर॥

सेवा क्या ? मैं समझ न पाया,
मैं हूँ दीन ग्रसित भव - माया।
गन्ध नहीं मुझमें भक्ति का,
पार नहीं प्रभु तव शक्ति का॥

मुझ पर करके दया दयालु,
माया - बन्धन दूर हटाओ।
मैल हृदय का दूर हटा कर,
मम हृदिमें हरि प्रेम जगाओ॥

कामी नीच अधम अभिमानी,
अहङ्कार का नशा अमित है।
धर्म कर्म में प्रीत ना मेरी,
विषय भोग में प्रीत अधिक है॥

हूँगा कैसे पार भव सागर,
भक्ति भावका लेश न मुझमें।
अवगुण की भी कमी नहीं है,
भवतारण की शक्ति तुममें॥

वाणी पर विश्वास न पाकर।
लिया गले में माया का धन।
बिगड़ी बुद्धि पड़ा भवँर में,
कैसे निकलूँ राह न भगवन॥

आज तीज का सुन्दर अवसर,
सभी ओर है मङ्गल छाया।
बड़भागिन धराधाम में,
लगता है गोलोक समाया॥

यह पावन तिथि निशिदिन आवें
इसी तरह से हिय हुलसावें।
चरणों में कुछ कह देने का।
हमको भी अधिकार दिलावें॥

जो कुछ हूँ वह आप ही जाने,
मैं तो तव चरणों का सेवक।
सेवक बनने की भी क्षमता,
दे दो मुझको हे देवक॥

सन्त-चरण में प्रीत हो मेरी,
कृष्ण-प्रेम हो उर के अन्दर।
इस भिक्षा के साथ दयालु,
अर्पित करता पुष्प मनोहर॥

जगमें आप समान न कोई,
हिती-मित्र प्रभु तुम सब हो।
स्वारथ का संसार दयामय!
प्रेम-दया के आलय तुम हो॥

—सत्यपाल गोयल एम० ए०

श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

पंचम वृष्टि–तृतीयधारा

[वर्ष १३, संख्या ५-६ पृष्ठ १२० से आगे]

विरोधानुभव

विरोधानुभव शुद्धज्ञानका पाँचवाँ और अन्तिम प्रकरण है। विरोधानुभाव चार प्रकारके हैं—

(क) परेशस्वरूप विरोधानुभव।

(ख) स्वस्वरूप विरोधानुभव।

(ग) स्वधर्मस्वरूप विरोधानुभव।

(घ) फलस्वरूप विरोधानुभव।

(क) परेशस्वरूप विरोधी कार्य

परमेश्वरके रूप, गुण और लीलासमूह एकत्रित होकर उनके स्वरूपका उदय कराते हैं। परमेश्वर को निराकार या अरूप माननेसे उनके श्रुतिकथित नित्यसच्चिदानन्द रूपका विरोधी मतवाद हो पड़ता है। परमेश्वर का जड़ीयरूप नहीं है—इस कथन का तात्पर्य यह नहीं है कि परमेश्वर निराकार हैं तथा 'वे निर्गुण हैं'—का तात्पर्य यह नहीं कि उनमें गुण ही नहीं है। परमेश्वर अचिन्त्य सर्वशक्तिमान हैं। उनके अप्राकृत गुण-समूह अचिन्त्य हैं। उनको रूपरहित केवल सर्वव्यापी माननेसे अतिशय क्षुद्र हो पड़ते हैं, क्योंकि वैसी दशामें परमेश्वरमें रूप धारण करनेका सामर्थ्य भी नहीं होता। अतः वे सर्वशक्तिमान भी नहीं हो सकते। इसलिए परमेश्वर मध्यमाकार होकर भी सर्वत्र ही युगपत् पूर्ण रूपसे वर्तमान हैं—उनका यह गुण अलौकिक और अचिन्त्य है।* उनको निर्विशेष माननेसे, उनमें केवल एक ही गुण—निर्विशेषताकी स्थिति मान कर उनको क्षुद्र बना देना होता है। उनको युगपत् सविशेष और निर्विशेष माननेसे उनके अलौकिक अचिन्त्य गुणका परिचय मिलता है। कुछ लोग यह कहते हैं कि परमेश्वरने माताके गर्भमें जीवोंकी सृष्टि करके उनके द्वारा अपने बताए हुए सुखधाम

---

* अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः। परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥
नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः। मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥
(गी. ७।२४।२५)

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्। ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥
(गीता ७।२८)

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्। पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्चयः ॥
(भा० १०।६।१३)

जगतको और भी अधिक उन्नत करवा लेंगे। जो जीव उनका जितना ही अधिक प्रिय कार्य करेगा, उसको वे उतना ही अधिक सुख प्रदान करेंगे, ऐसा सोचकर ही परमेश्वरने जगत और जीवकी सृष्टि की हैं। परन्तु उनका ऐसा कथन परमेश्वरकी अचिन्त्य लीलाका विरोधी है।

जो सिद्धसंकल्प और सर्वशक्तिमान पुरुष है, उनकी यदि यह इच्छा होती कि यह जगत और भी अधिक उन्नत होवे तथा इसमें किसी प्रकारका भी अभाव न रहे, तो उनकी इच्छाके साथ-ही-साथ यह जगत उसी प्रकारका हो जाता। परन्तु इसके विपरीत कुछ तो उनकी इच्छासे ऐसा हुआ और बाकीको, वे जीवोंके द्वारा पूरा करावेंगे—ऐसा जो लोग मानते हैं, वे ईश्वरको भी असिद्ध सुनार, लोहार या बढ़ईकी भाँति क्षुद्र मानते हैं। इस प्रकार अशुद्ध और तुच्छ सिद्धान्तोंको मान्यता देने वाले अनेकों प्रकारके अनार्यजुष्ट मत जगतमें प्रचलित हैं। भगवान स्वरूपतः एक तत्त्व होकर भी द्रष्टृ-स्वरूप जीवोंके अधिकारके अनुसार उदित होते हैं। ऐसा देखकर भगवानके एकतत्त्वत्वको अस्वीकार करना भी परेश स्वरूपविरोध-कार्य है।* भगवान् प्रकृतिसे सर्वथा परे और निर्मल रहकर भी भक्तियोग द्वारा श्रीमूर्तिमें प्रतिभात होते हैं। यह उनकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे होता है। इस प्रतिभावित श्रीमूर्तिकी सेवा करना ही भक्त जीवनके लिये उचित कार्य है। श्रीमूर्तिकी सेवा त्याग करके-'ब्रह्म निराकार हैं, उनका स्वरूप-विग्रह नहीं है'—इस प्रकार सिद्धान्त अपनाकर जो लोग निराकार तत्त्वको प्राप्त करनेके लिए एक मिथ्या आकृतिकी सृष्टि करके उसकी उपासना करते हैं, वे पौत्तलिक हैं। उनकी ऐसी उपासनाका फल भी इसी प्रकार तुच्छ ही होता है। उनमेंसे कोई-कोई अपनेको पण्डित अभिमान करके वैसी पौत्तलिकता का परित्याग करके प्रणवको धनुष, आत्माको बाण और ब्रह्मको लक्ष्य मानकर अध्यात्म योगका साधन करते हैं। इनका कहना यह है कि पौत्तलिक लोग आँखें खोलने पर मिट्टी या लकड़ी द्वारा निर्मित प्रतिमूर्ति देखते हैं और आँखें बन्द करने पर उस प्रतिमूर्तिकी प्रतिमूर्ति अपने हृदयमें भावना कर उसके प्रति अपने सम्पूर्ण प्रेमको अर्पित करनेकी चेष्टा करते हैं। परन्तु इससे वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती। वास्तवमें ये लोग एक प्रकारसे ठीक ही कहते हैं; परन्तु ऐसा जानकर भी ये लोग भी पूर्वोक्त कार्यमें प्रवृत्त हो पड़ते हैं। जिन्होंने परमेश्वरकी मूर्ति नहीं देखी है, वे जिस मूर्तिका निर्माण करते हैं, वह अवश्य ही पौत्तलिक है। जैसे सनातन ऋषि को मैंने देखा नहीं है। मैंने कल्पनासे सनातन ऋषि की एक मूर्ति बनायी, परन्तु वह ठीक नहीं हुई। फिर उसीमें प्रेम स्थापन करनेसे सनातन ऋषि उसे

---

* न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं बिना विनोदं बत तर्कयामहे।
भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥
(भा० १०।२।३९)

प्राप्त करते हैं या नहीं, इस विषयमें संदेह है। किन्तु जिन्होंने सनातनको देखकर उनका फोटोग्राफ (चित्र) लिया है, वे ही उस फोटोका दर्शन करके नेत्र बन्द करने पर वास्तव सनातनको हृदयमें दर्शन कर सकेंगे। फोटोग्राफ तो केवलमात्र सत्य भावका उद्दीपक होता है। यहाँ पर पौत्तलिकता नहीं होती। बल्कि वैज्ञानिकोंने इसे स्मरणके लिए एक यथार्थ उपाय माना है। प्रणव धनुष आदि जिस आध्यात्म —योगकी प्रक्रियाका उल्लेख किया गया है, वह साधकोंके लिये एक प्राथमिक क्रिया है।× उसके द्वारा साधकका हृदय चरितार्थ नहीं होता। भगवान् का साक्षात्कार न होने तक इसी प्रकारकी बहुत सी प्राथमिक क्रियाएँ हैं और तदधिकारियोंके लिए वे करणीय भी हैं। जिन्होंने भगवत्स्वरूपके दर्शन किये हैं, वे हृदयमें उस स्वरूपका सब समय ध्यान करते हैं तथा प्राकृत जगतमें तदनुशीलनको व्याप्त करनेके लिए तदनुरूप श्रीमूर्ति प्रकाश करते हैं। वही श्रीमूर्ति दर्शकोंके लिए उद्दीपक तत्त्व है तथा साधकोंको परमार्थ प्रदान करती है। जैसे स्वरूप दर्शनकारीके लिए मिथ्याकल्पित मूर्ति अमंगलजनक होती है, उसी प्रकार स्वरूपाभावरूप ब्रह्मयोगादि भी अनर्थकर हैं। ये सभी क्षुद्र प्रक्रियाएँ वस्तु प्राप्त होनेके पूर्व प्रायः ही सम्पन्न होते हैं। ये सभी भगवत् स्वरूपविरोधी मत सब प्रकारसे परित्याग करने योग्य हैं।

श्रीविग्रहसेवा और पौत्तलिकतामें पार्थक्य

तत्त्वान्ध व्यक्ति परमेश्वरके स्वरूपज्ञानलाभमें असमर्थ होकर भक्तोंकी श्रीविग्रहसेवाको पौत्तलिकता कहकर निन्दा किया करते हैं। मुसलमानोंका असम्पूर्ण धर्म, ईसाईयोंका क्षुद्र मत और उन दोनों के अनुगत ब्राह्म-धर्मद्वारा भारतवासियोंकी पवित्र धर्मबुद्धिको दूषित करने पर नवीन सम्प्रदायोंमें श्रीविग्रहके प्रति अश्रद्धा हो गई है। दुःखकी बात यही है कि श्रीविग्रह-निन्दा करनेके पूर्व कोई भी व्यक्तिने इस विषयपर सम्यक् प्रकारसे विचार नहीं किया। श्रीश्रीमन्महाप्रभुजीकी शिक्षाओंसे यही जाना जाता है कि जिस धर्ममें श्रीविग्रह-सेवा नहीं है, वह धर्म नितान्त अकर्मण्य है। भक्तिमार्गमें श्रीविग्रह-सेवाकी अपेक्षा उच्चतर धर्मानुशीलनके लिए दूसरा कोई उपाय नहीं है। अतएव निन्दकों के मतका थोड़ा बहुत विचार करना आवश्यक है।

---

* त्वं भक्तियोगपरिभावितहृत्सरोज
आससे श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया न उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥ (भा० ३।९।११)
विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।
केवलानुभवानन्द--स्वरूपः सर्वबुद्धिदृक्॥ भा० १०।३।१३)

श्रीविग्रह-सेवा और पौत्तलिकतामे आकाश और पातालका भेद है। परमेश्वरके नित्यस्वरूपका अवलम्बन कर श्रीविग्रह परिसेवित होते हैं। जीवके चिद्देहगत चक्षुद्वारा परमेश्वरका स्वरूप जाना जाता है। व्यास-नारदादि महापुरुष और साधारणतः सभी निरूपाधिक भक्त परमानन्दयुक्त समाधि में उस सच्चिदानन्द-स्वरूप भगवानके नित्य स्वरूप का दर्शन करते हैं। अपनी मनोवृत्तिमें दिनरात उसी रूपका ध्यान करते हैं। प्राकृत जगतमें उस नित्य रूपकी प्रतिच्छायास्वरूप श्रीविग्रह दर्शन करते हुए नेत्रोंके आनन्दको बढ़ाते हैं। यह विग्रह कदापि कल्पित या जीवनिर्मित वस्तु नहीं होता। जो भक्तिरहित हैं, उनके लिए उसमें भगवत्स्वरूपता नहीं है। किन्तु भक्तोंके निकट वह नित्य चिन्मय मूर्त्तिका अर्चावतार है। श्रीविग्रह भगवत्स्वरूपके साक्षात् निदर्शनके अलावा स्वरूपेतर वस्तु नहीं हो सकता। समस्त शिल्प और विज्ञानमें जिस प्रकार अलक्षित तत्त्वका स्थूल प्रतिमूर्त्ति है, उसी प्रकार श्रीविग्रह जड़चक्षुके अगोचर भगवत्स्वरूपका प्रतिभूस्वरूप है। भक्तोंका भगवत्स्वरूप-प्रतिभू यथार्थ है। यह भक्त लोग विशुद्धभक्तिवृद्धिरूप फलद्वारा सर्वदा परीक्षा करते रहते हैं। विद्युत्यंत्रका जो यथार्थ सम्बन्ध है, वह केवल विद्युतफलकोत्पत्तिरूप फल द्वारा ही जाना जाता है; उस विषयमें जो अनभिज्ञ है, वे विद्युत्यन्त्रको देखकर क्या समझेंगे ? जिनके हृदयमें भक्ति नहीं है, वे विग्रहको पुत्तलिका कहने के सिवाय और क्या कह सकते हैं ? भक्तोंका सिद्धान्त यही है कि श्रीविग्रह-सेवाकारी व्यक्ति पौत्तलिक नहीं हैं। तब पौत्तलिक कौन हैं, इसका संक्षेपमें विचार किया जाय। भगवत्स्वरूपके साथ सम्बन्धहीन वस्तुकी उपासना जो करते हैं, वे पौत्तलिक हैं।

(क्रमशः)

प्रचार–प्रसंग

विभिन्न स्थानोंमें प्रचार

परमपूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् वामन महाराज बिहारके संथाल परगनाके अन्तर्गत दूमका, धाधिका, आदि स्थानोंमें प्रचार कर वहाँसे नवद्वीप धाम पहुँचे। वहाँसे वे प्रस्थान कर सुन्दरवन और २४ परगनाके काशीनगर, कृष्णचन्द्रपुर आदि स्थानोंमें प्रचार कर रहे हैं। उनके साथ श्रीमाधवदास ब्रह्मचारी, श्रीगोवर्द्धन ब्रह्मचारी, श्रीसारथिकृष्ण ब्रह्मचारी और श्रीरामपद ब्रह्मचारी हैं।

पूज्यपाद श्रीत्रिदण्डि महाराज मेदिनीपुर जिलाके दयालदासी अञ्चलमें प्रचार कर रहे हैं। इसके पूर्व वे उत्तर बंगालके जलपाई गुड़ी, रायगंज आदि स्थानोंमें प्रचार कर चुके हैं। उनके साथ श्रीकानाई दास ब्रह्मचारी, श्रीचिन्मयानन्द ब्रह्मचारी और श्रीगोविन्द ब्रह्मचारी हैं।

पूज्यपाद श्रीपर्यटक महाराज बर्द्धमान और हुगली जिलेमें प्रचार कर रहे हैं। उनके साथ श्रीहरिहर ब्रह्मचारी, श्रीहरिदास ब्रह्मचारी और श्रीरामगोपाल ब्रह्मचारी हैं।

पूज्यपाद श्रीन्यासी महाराज मेदिनीपुरके पूर्वचक अञ्चलमें प्रचार कर रहे हैं। उनके साथ श्रीउज्ज्वलनीलमणि ब्रह्मचारी, श्रीअनन्तदास ब्रह्मचारी, श्रीनवीन कृष्ण बाबाजी, और श्रीनयनाभिराम ब्रह्मचारी हैं।

पूज्यपाद श्रीगजेन्दमोचन ब्रह्मचारी श्रीश्यामगोपाल ब्रह्मचारी, श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी, और श्रीनिमानन्द ब्रह्मचारीको साथ लेकर मेदिनीपुरके महिषादल अञ्चलमें प्रचार कर रहे हैं।

पूज्यपाद श्रीवृषभानु ब्रह्मचारी श्रीभक्तपाङ्घ्रिदास ब्रह्मचारी, श्रीकृपासिन्धु ब्रह्मचारी और श्रीहरेकृष्ण दासाधिकारीको साथ लेकर मेदिनीपुरके सवंग अञ्चलमें प्रचार कर रहे हैं।

अन्यान्य प्रचारकगण भी विभिन्न स्थानोंमें प्रचार कर रहे हैं।

—निजस्व संवाददाता

जगद्गुरु श्रील प्रभुपादजीका तिरोभाव महोत्सव

गत ५ नारायण, ५ पौष, २१ दिसम्बर बृहस्पतिवारको विश्वव्यापी गौड़ीय मठके प्रतिष्ठाता और श्रीरूपानुग सम्प्रदायके आचार्य भास्कर जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी

ठाकुरका तीसवाँ तिरोभाव महोत्सव समितिके मूल मठ और शाखाओं बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है।

समितिके मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें एक सभाका आयोजन किया गया था। इस सभामें श्रीश्रील आचार्यदेवने सभापतिका आसन समलंकृत किया। इस सभामें विशिष्ट संन्यासियों तथा ब्रह्मचारियोंने श्रील प्रभुपादजीके अतिमर्त्य चरित्र पर प्रकाश डाला। अन्तमें श्रीश्रील आचार्यदेवने श्रीश्रील प्रभुपादजीके दानके वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते हुए एक सारगर्भित भाषण दिया। उस समय उन्होंने श्रीश्रील प्रभुपादजीके मुख निःसृत वाणीका उल्लेख किया। एक बार श्रील प्रभुपादजीने अत्यन्त खेदके साथ कहा था—"हाय ! जगत मुझे समझ नहीं सका। मैं जो वस्तु देना चाहता था, उसे केवल कुछ लोगोंने ही ग्रहण किया है।" इसीसे जाना जाता है कि श्रील प्रभुपाद कैसा अमूल्य वस्तु जगतको देना चाहते थे।

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुचूड़ामें श्रीपूज्यपाद श्रीमद भक्तिवेदान्त मुनि महाराजके समापतित्वमें एक सभाका आयोजन किया गया था। मठस्थ ब्रह्मचारियोंने तथा संन्यासियोंने भाषण दिए। सभापति महाराजने कहा कि श्रील प्रभुपादजीने जो वस्तु जगतको दान किया, ऐसा उनके पूर्व और किसीने दान नहीं किया।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें पूज्यपाद श्रीमद् नारायण महाराजके सभापतित्वमें एक सभाका आयोजन किया गया था। मठस्थ ब्रह्मचारियोंके भाषणोंके पश्चात् श्रील सभापति महाराजने श्रील प्रभुपादजीके अतिमर्त्य चरित्रके विभिन्न पहलुओं पर विशदरूपसे प्रकाश डाला।

सभी मठोंमें उक्त दिवस निमन्त्रित और अनिमन्त्रित सभी सज्जनोंको प्रचुर रूपमें महाप्रसाद वितरण किया गया।

—निजस्व संवाददाता

श्रीअद्वैत-सप्तमी और श्रीनित्यानन्द त्रयोदशीका अनुष्ठान

गत २२ माधव, २३ माघ, ६ फरवरीको महाविष्णुके अवतार श्रीअद्वैताचार्यजीकी तथा २८ माधव, २९ माघ, १२ फरवरीको श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुकी आविर्भाव-तिथि-पूजा समितिके सभी मठोंमें उपवास, पाठ-कीर्त्तन, आदिके माध्यमसे सम्पन्न हुए हैं। उक्त दोनों दिवस ही श्रीश्री अद्वैताचार्यजी और श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभुके तत्त्वके बारेमें विशद्रूपसे आलोचना की गई।

—प्रकाशक

* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ

तेवरिपाड़ा, पो० नवद्वीप,
(नदिया)

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन—

कलियुग-पावनावतारी स्वयं भगवान् **श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि** की निखिल भुवन-मङ्गलमयी **आविर्भाव तिथि-पूजा** (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्यमें **श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति** के उद्योगसे उपरोक्त ठिकानेपर आगामी २५ फाल्गुन, ९ मार्च बुधवार से १ चैत्र, १५ मार्च, मङ्गलवार पर्यन्त सप्ताहकालव्यापी एक **विराट महोत्सव** का अनुष्ठान होगा। इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रवचन, कीर्त्तन, वक्तृता, इष्ट-गोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा, **महाप्रसाद वितरण** प्रभृति विविध भक्त्यङ्ग याजित होंगे।

इस उपलक्ष्यमें श्रीश्रीनवद्वीपधाम के अन्तर्गत नौ द्वीपोंका दर्शन तथा तत्तत्स्थान-माहात्म्य-कीर्त्तन करते हुए **सोलह-क्रोशकी परिक्रमा** होगी। गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी **श्रीनृसिंहपल्ली, मामगाछी एवं श्रीधाम मायापुरमें** मध्याह्न भोगराग और प्रसाद सेवाके पश्चात् संध्याको श्रीनवद्वीपमें लौट आने की सुव्यवस्था की गई है।

धर्मप्राण सज्जन-वृन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठान में सबान्धव योगदान कर समिति के सदस्यवर्ग को परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे। इस महदनुष्ठानका गुरुत्व उपलब्धि कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवाकार्यमें सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे। इति १ फरवरी १९६८।

शुद्धभक्त कृपालेश-प्रार्थी—

"सभ्यवृन्द"

श्रीगौडीय वेदान्त समिति

द्रष्टव्य—विशेष विवरण के लिये अथवा साहाय्य (दानादि) देनेके लिये त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति-प्रज्ञान केशव महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकाने पर लिखें या भेजें।